eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 02, Issue 09, September 2023

लैंगिक असमानता और मानवाधिकार

[1]डॉ० अरविंद कुमार
[1]सहायक प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, महामाया राजकीय महाविद्यालय, कौशाम्बी।

Received: 31 August 2023 Accepted and Reviewed: 31 August 2023, Published : 10 September 2023

Abstract

कहने को तो आज हम 21वीं सदी के मुहाने पर खड़े हैं किंतु लैंगिक भेदभाव जो हमारे समाज में आज भी बदस्तूर कायम है वह 21वी सदी को झूठा साबित कर रहा है। आज भी अगर हम लैंगिक समानता पर बात करते हैं तो यह बड़ा ही आश्चर्यजनक है। जहां समाज में विकास और प्रगति के नाम पर हर कोई अपनी पीठ थपथपाने में लगा हुआ है उस समाज में अगर हम लैंगिक असमानता की बात करें तो इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है। समाज में बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो बेटे के जन्म पर जश्न मनाता है और बेटी के जन्म लेते ही वहां मायूसी छा जाती है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि हमारे समाज में कभी भी बेटी के जन्म को उत्सव के रूप में देखा ही नहीं गया और न ही उसके जन्म पर किसी तरह का जश्न मनाने की परंपरा रही हो, उसे या तो बोझ समझा गया या तो समाज की चारदीवारी में कैद रहने वाली कड़ी। यहां तो लड़को की चाह में न जाने कितनी लड़कियों ने जन्म ले लिया तो सोचिए जो पहले से ही अनचाहा हो उसके आने पर कैसे खुशी, बल्कि वह तो अपने माता–पिता के लिए केवल दुख का कारण ही बनी, और जो दुख का कारण है उसके लिए भला कोई कैसे खुशी मना सकता है।

शब्द संक्षेप– जेंडर आधारित हिंसा, लैंगिक असमानता और मानवाधिकार एवं मानवीय गरिमा।

Introduction

हमारे समाज में बहुत सारे भ्रूण हत्याएं भी इसी का परिणाम है अनचाहे गर्भ के रूप में लड़कियों को जन्म देने से ज्यादा आसान उन्हें मारना है क्योंकि चाहत तो हमेशा पुत्र की रही और अनचाहे पुत्री आ गई तो उसको इस दुनिया में लाने से ज्यादा आसान उसे मृत्यु के मुख में डालना रहा। लड़के के लिए इतना ज्यादा माता–पिता के मन में प्रेम भाव होता है कि उनके जन्म की चाह में हम प्राचीन काल से ही लड़कियों को जन्म के समय या जन्म से पहले ही मारते आ रहे हैं और जो अपने भाग्य या सौभाग्य से बच जाती हैं तो यह समाज उन्हें जीवन भर ताने और उलाहने मार–मार कर उनके साथ भेदभाव के अनेक तरीके ढूंढ कर उनके हृदय को छलनी करता रहता है। और कभी भी लड़कियों को चौन से जीने नहीं देता। यह लैंगिक भेदभाव और असमानता का सबसे भयानक पहलू है और यह समाज जान कर भी अंजान बना हुआ है। हर किसी को यह असमानता दिखती तो है किंतु कोई भी इस पर बात नहीं करना चाहता।

लैंगिक शब्द की परिभाषा की बात करें तो लैंगिक शब्द वास्तव में पुरुषों और महिलाओं के कार्यों और व्यवहारों को परिभाषित करता है, यह लिंग शब्द का प्रारूप है जो सामाजिक सांस्कृतिक शब्द से संबंधित है। यह समाज के पुरुष और महिलाओं का द्योतक है सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृ

तिक पहलुओं से अगर हम इस शब्द का विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होगा कि लिंग पुरुष और महिलाओं के बीच शक्ति के कार्य से संबंधित है जहां पुरुषों को महिलाओं से श्रेष्ठ माना जाता है।

लैंगिक समानता को सामान्य शब्दों में इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि लैंगिक आधार पर ही महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है समाज में परंपरागत रूप से महिलाओं को कमजोर जाति वर्ग के रूप में माना जाता है। वैसे तो यह समाज नारी को आदि शक्ति के रूप में पूजता है किंतु यह सिर्फ उसके दोहरे रूप का परिचायक है, क्योंकि वास्तव में अगर यह समाज नारी को आदिशक्ति मानता तो उसे इस लैंगिक भेदभाव का शिकार नहीं होना पड़ता किंतु समाज का दोहरा चरित्र एक तरफ तो उसे आदिशक्ति मानने के लिए मजबूर करता है और दूसरी तरफ वह उसी आदिशक्ति को नोच–नोच कर खाता है, उसकी अस्मिता को कुचलता है और उसे अपने वर्चस्व से लहूलुहान करता है। लैंगिक भेदभाव की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि एक महिला को घर और समाज दोनों जगह शोषण का शिकार होना पड़ता है तथा अपमान के घूंट पीने को मजबूर होना पड़ता है। वह इस भेदभाव से पीड़ित होने के बाद भी आखिर गुहार कहां लगाएं क्योंकि जो उसका शोषण कर रहा है भला वही उसकी सहायता कैसे कर सकता है? कहने का तात्पर्य है कि पुरुषवादी समाज जो स्वयं उसका शोषण कर रहा है वह भला उसे किस तरह सहायता कर सकता है। भारतीय गणतंत्र के सात दशक बीत जाने के बाद भी भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, बलात्कार, जबरन वेश्यावृत्ति, छेड़खानी तथा यौन शोषण की घटनाए दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। अतः कब कोई महिला इन घटनाओं की शिकार हो जाए महिलाएं डर के इसी साए में जीने को मजबूर हैं। इसतरह महिलाओं के दिमागी ताकत का बड़ा हिस्सा इस डर से बचने के जुगत सोचनें में ही खर्च हो जाता है। महिलाएं जो दिमाग विज्ञान, तकनीकि और रचनात्मकता में लगाकर राष्ट्र की उन्नति में योग देकर शिखर पर पहुंचा सकती थीं वह दिमाग शिकार होने से बचने में ही खर्च हो जाता है। देश का इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है।

भारत में झुग्गी झोपड़ियों, कच्ची व मैली बस्तियों में पापड़ से लेकर खिलौनें, छोटे मोटे कल पूर्जे, कांच के सामान, कालीन, माचिस, बीड़ी आदि बनाने वाली लाखों–करोंड़ों महिलाएं प्रतिदिन 10 से 12 घंटे काम करने के बाद भी सिर्फ हजार–दो हजार रुपये प्रतिमाह कमाने को अभिशप्त हैं। अतः वे आज तक ये जान ही नहीं पायी हैं कि बराबर काम के लिए बराबर मजदूरी जैसा भी कोई कानून है। ये महिलाए यह भी नहीं जानती कि हर रोज होने वाले अरबों–खरबों के व्यापार की रीढ़ असल में वे ही हैं, अतः इस देश की समृद्धि, लोकतंत्र के स्थायित्व तथा विकास में उनका क्या योगदान है, उन्हे कभी बतलाया ही नहीं गया कि, कही ऐसा न हो कि महिलाएं लिंगभेद और गैर–बराबरी पर सवाल न उठा दें तथा बराबरी के हक की लड़ाई न छेड़ दें। देश के कुल खेतिहर काम का लगभग 46 प्रतिशत काम करने वाली इस देश की करोड़ों महिलाओं के घरों में आज भी भरपेट भोजन नसीब नहीं हो पाता है।

अतः इससे साफ तौर पर अंदाजा लगाया जा सकता है कि हमारे देश में लैंगिक भेदभाव की जड़ें कितनी मजबूत और गहरी है। और इसका प्रमुख कारण समाज की दोहरी मानसिकता है, जो नारी के विकास व उत्थान के आड़े आती है। यह दोहरी मानसिकता ही उन्हे केवल घरेलू कार्य के ही अनुकूल मानती है। अतः उसका कार्य घर की देखभाल करना, खाना पकाना तथा बच्चों की

परवरिश करने तक ही सीमित माना जाता है। अक्सर देखा गया है कि घर के किसी महत्वपूर्ण निर्णय में महिलाओं की भूमिका न के बराबर होती है कोई भी फैसला लेना हो तो न तो उनसे सलाह ली जाती है और न ही उनसे सलाह लेना उचित समझा जाता है। और अगर वह सलाह देना भी चाहे तो उनकी इस उपस्थिति और दखलअंदाजी को पुरुषवादी समाज बर्दाश्त नहीं करता। इतना ही नहीं महिलाओं के मुद्दों से संबंधित विभिन्न सामाजिक संगठनों में भी महिलाओं की न्यूनतम संख्या लैंगिक असमानता के विकराल रूप को व्यक्त करती है। इसतरह आप समझ सकते हैं कि जो संस्थाए महिलाओं की समस्याओं को सुलझाने की बात करती है वहां ही अगर महिलाओं की संख्या न के बराबर है तो उनकी समस्या को सुनेगा कौन और सुलझाएगा कौन? यह भी अपने आप में महत्वपूर्ण प्रश्न है।

साहित्य जगत में अगर हम लेखकों की स्थिति पर नजर डालें तो स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य भी इस लैंगिक असमानता से अछूता नहीं है। पुरुष लेखकों की तुलना में लेखिकाओं की संख्या इस स्थिति को पूर्ण रूप से स्पष्ट करती है। जहां पुरुष वर्ग बेबाकी से अपनी हर मनोभावों को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है वहीं महिलाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति कहीं न कहीं उन्हें चुभती है और उनका इस तरह बेबाकी से लिखना समाज को स्वीकार नहीं होता। किंतु यह असमानता हमें वैदिक साहित्य में नहीं दिखता प्रारंभिक साहित्य से हमें यह पता चलता है कि वैदिक युग में लड़कियों के जन्म पर खुशियां भी मनाई जाती थी और उत्सव भी होता था साथ ही उनका उपनयन संस्कार भी किया जाता था। वह भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए लड़कों की भांति आश्रम और गुरुकुलों में जाया करती थी। लेकिन आज के समाज की संकीर्ण मानसिकता ने उन्हें धीरे–धीरे शिक्षा से दूर कर दिया और कालांतर में उनके लिए एकमात्र संस्कार रह गया जिसे हम विवाह के रूप में जानते हैं। लैंगिक असमानता के कारण महिलाओं का जीवन नर्क बन गया और उन्हें घर के काम करने वाली नौकरानी से ज्यादा कुछ नहीं समझा जाने लगा। घर संभालना और घर की चारदीवारी में रहना उनकी नियति बन गई। इस असमानता ने उनके जीवन की सारी उम्मीदों और आशाओं पर पानी फेर दिया। परंतु यह भी यथार्थ सत्य है कि लैंगिक असमानता को आज की नारी लेखिकाओं ने बड़ी ही उग्रता के साथ चित्रित किया है और आज जो नारी लैंगिक भेदभाव को झेल रही हैं उसे हू–ब–हू समाज के सम्मुख रखने का साहस भी दिखाया है।

हिंदी कविता का रचना संसार, उसका दायरा आज समुंद्र से भी बड़ा हो गया है यहां हर रोज इतने विषयों पर इतनी उम्दा कविताएं लिखी जा रही है जिस पर एक साथ चर्चा करना नामुमकिन है। आज की महिला लेखिकाओं ने बड़ी ही निडरता और खूबसूरती के साथ महिलाओं की स्थिति के बारे में बात ही नहीं की, बल्कि नारियों के दर्द और स्त्री मन के परतों को भी धीरे–धीरे खोल दिया। उपासना झां की यह कविता इस बात की परिचायक है कि आज की लड़कियां किस तरीके से घर में, परिवार में, स्कूल–कॉलेज, दफ्तर, बाजार, नाते–रिश्तेदार या पूरी दुनिया में ही परेशानियों और तानों की मार झेल रही हैं, लोगों की अजीब नजरों का सामना कर रही हैं फिर भी हार नहीं मानती, हालातों से लड़ती हैं, झगड़ती हैं, चोट खाती हैं और घायल भी होती है, गिरती भी हैं और खुद संभालती भी हैं। लहूलुहान जख्मों को अपने टूटे उम्मीदों से सिलती हैं पर अपने सपनों को

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 02, Issue 09, September 2023

जिंदा रखने की कोशिश करती रहती हैं और उन कोशिशों में कामयाब भी होती हैं। अतः उन्हें आसमान का वह खुला स्थान चाहिए जिसे पाने के लिए सदियों से लड़ रही हैं यथा :–

हर क्षण खंडित होती उनकी आत्मा में अब भी सपने हैं,
आसमानों के लाख पहरे, हो लाख दीवारें,
कौन रोक पाया है उड़ानों को''।

यह पंक्तियां इस बात को साबित करती हैं कि लैंगिक असमानता के कारण कुछ भी हो लेकिन हमें अपने हौसलों अपने उम्मीदों को बुलंद रखना होगा और हर परिस्थिति से लड़कर अपना स्थान इस समाज में पाना होगा। जब तक हम स्वयं अन्याय के विरुद्ध नहीं उठ खड़े होंगे तब तक यह समाज हमें हमारा स्थान कभी वापस नहीं करेगा। अतः आप जब अपने अधिकारों के प्रति सचेत और जागरूक हो जाएंगे तो समाज को नारी के प्रति भेदभाव और असमानता को मिटाना ही होगा। यह तितलियां हमें हमारी शक्ति याद दिलाती हैं जैसेः–

तितलियां खोज लेंगी अपना रास्ता,
नोचे हुए मटमैले परों को समेटना
और उठाना भी उनको आता है
तितलियां फिर उड़ेगी। (तितलियां फिर उड़ेंगी– कविता)

साहित्य हमेशा से मानवाधिकार की वकालत करता आ रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रगतिवाद की रचनाओं में देखने को मिलता है। प्रेमचंद ने कहा था कि ''साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं वह उससे आगे चलने वाला एडवांस गार्ड है, वह विद्रोह का नाम है जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरीति से पैदा होती है''। इन पंक्तियों को आगे बढ़ाते हुए कहा जा सकता है कि अन्याय, अनीति और कुरीति के प्रति विद्रोह का जन्म तभी होता है जब मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और सचेत हो। क्योंकि आज इस तरह का माहौल मनुष्य के चारों ओर व्याप्त है कि मनुष्य का मनुष्य के ऊपर से भरोसा उठता जा रहा है। व्यवस्था और शासन पर से तो पहले ही उसका भरोसा उठ चुका है। राजनीति का तंत्रिका तंत्र आम आदमी की अस्मिता और अधिकारों को कुचल कर खुश हो रहा है इसी कारण संदेह, असुरक्षा, दबाव और तनाव के चलते व्यक्ति भावनात्मक स्तर पर ही नहीं, शारीरिक रूप से भी स्वयं को असुरक्षित महसूस करता जा रहा है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और लेखक समाज का अभिन्न अंग होता है। अतः समाज में जो असमानता दिखाई देती है उस पर लेखनी चलाना उसका दायित्व भी है और कर्तव्य भी। लैंगिक असमानता के कारण नारी का जीवन ही नारकीय हो जाता है तो यह विषय भला साहित्यकार की लेखनी से कैसे अछूता रह सकता है।

अतः उन्होंने इस विषय पर भी पर्याप्त रचनाएं लिखकर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया एवं यह समझाने का प्रयास किया कि हम जिस पर इतना अत्याचार, अनाचार कर रहे हैं वह भी इसी समाज का हिस्सा है तथा वह भी हमारे जैसा ही प्राणी है अतः उन पर इसतरह का शोषण नहीं होना चाहिए तथा हमे ''अन्याय के विरुद्ध न्याय का बिगुल बजाना ही चाहिए''। लैंगिक असमानता के दंश

से बाहर निकाल कर महिलाओं के जीवन स्तर को ऊपर उठाना होगा तथा उसके स्व की पहचान के साथ जीने का ऐसा अधिकार दिलाना होगा जहां उनमें मानवीय योग्यताओं और मानवीय क्षमता का विकास हो सके।

लैंगिक असमानता की जड़ें समाज से खत्म हो इसके लिए नारी को शिक्षा रूपी हथियार देना होगा तभी हम लोकतंत्र की चर्चा गर्व से कर सकते हैं, वरना लोकतंत्र की चर्चा बेमानी ही है। हर अच्छे साहित्यकार को लोकतांत्रिक मूल्यों के हनन के प्रति इस समाज को सचेत करना होगा। साहित्य और मानवाधिकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यह बात मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर, को पढ़ने के बाद स्पष्ट हो जाती है। अतः साहित्यकारों को भी मानवाधिकार और लैंगिक असमानता के प्रति सचेत व जागरूक करने के लिए वचनबद्ध होना होगा। अतः एक सच्चे साहित्यकार होने के नाते अपने कर्तव्यों का निर्वहन भली–भांति करते हुए हमें लैंगिक असमानता को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रयास करना चाहिए तभी सच्चे मायने में मानवाधिकार की बात कर पाएंगे।

पुस्तक संदर्भ सूचीः–

1. दुबे अभय कुमार(संपा0); 'पितृसत्ता के नये रुप' भारत का भुमण्डलीकरण,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
2. राय अरुन्धति; कठघरे में लोकतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
3. अदावल सुबोध एवं माधवेंद्र उनियाल; भारतीय शिक्षा की समस्याएं तथा प्रवृत्तियां, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1982
4. सिंह खुशवंत; पाकिस्तान मेल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
5. दुबे अभय कुमार(संपा0); बीच बहस में सेकुलरवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
6. मुद्गल चित्रा; एक जमीन अपनी, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, 2010
7. यादव राजेंद्र; एक दुनियाः समानान्तर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नईदिल्ली, 2010
8. कस्तवार, रेखा; स्त्री चिंतन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
9. मीणा, हरिराम; आादिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2016.
10. डॉ0 नामदेव; जोतिबा फुलेः आधुनिक सामाजिक क्रांति के अग्रदूत, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2017.
11. मिल, जॉन स्टुअर्ट; स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2009
12. हौली, जॉन स्टैटन; भक्ति के तीन स्वरः मीरा, सूर, कबीर (अनु. अशोक कुमार); राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2020.